VISION AHEAD
(An Online Peer Reviewed/ Refereed Bilingual International Journal of Multidisciplinary Studies)
VOLUME 1, JAN-DEC 2023 **ISSN:**

मनुष्य माने जाने की जद्दोजहद – नालासोपारा

डॉ0 आभा त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर,
सी0एम0पी0 कॉलेज,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

सारांश

पोस्ट बॉक्स नं 203 नालासोपारा में चित्रा मुद्गल स्त्री–पुरुष पहचान से इतर जन्में विनोद उर्फ़ बिन्नी उर्फ बिमली की कहानी उपन्यास विधा के माध्यम से कहती हैं। समाज ऐसे मनुष्य को किन्नर (किम्+नर) हिजड़ा आदि पहचान देकर एक अलग खाँचे में रखता है। उनकी जगह समाज की मुख्य धारा से अलग ऐसे लोगों के बीच है जो अपने–अपने घर तथा समाज से बहिष्कृत हैं। अच्छे खाते–पीते परिवार से संबंधित होते हुए भी सबके सामने हाथ फैलाने को बाध्य हैं। जीने के संकट उनके सामने भी हैं। उनका जीवन उनके लिए प्रतिपल शर्मिंदगी का पर्याय बन जाता है। मुख्य धारा से कटा यह पूरा समुदाय शिक्षा से वंचित है, संपत्ति के अधिकार से वंचित है, परिवार के स्नेह से वंचित है, कुल–गोत्र की पहचान से वंचित है। हमारी आख्यान परम्परा में इस वर्ग से जुड़ी अनेक कहानियाँ मौजूद हैं। समाज में स्त्री–पुरुष से इतर पहचान के साथ जन्म लेना एक भयावह त्रासदी है। विनोद इस त्रासदी को जीवन भर भुगतता है। विनोद ही क्यों उसके समुदाय के सभी मनुष्य पीड़ा की गहरी सरणि से गुजरते हैं। उनके घर–परिवार वाले भी गहरी यन्त्रणा से गुजरते हैं। सामाजिक–पारिवारिक दबाव के कारण वे भले ही लिंग विकलांग शिशु को किन्नर समाज को सौंप कर लांछना से मुक्त होने की कोशिश करते हैं किन्तु मन की लांछना प्रतिपल अग्नि बन कर भीतर धधकती रहती है। विनोद की माँ बा प्रतिपल इस अग्नि में जलती है, अपने को धिक्कारती है। उपन्यास में विनोद की परिणति किसी दुर्घटना का परिणाम न होकर सोची–समझी करतूत है। चंडीगढ़ में उसकी स्वीकार्यता देखकर उसके नियोक्ता डोर खींचकर गति अवरुद्ध करने की तैयारी करते हैं। उसे तुरंत दिल्ली बुलाया जाता है और वहाँ माँ की बीमारी के बहाने मुंबई का टिकट थमा कर ठिकाने लगे दिया जाता है। चेतना को कुन्द करने और जाग्रत को सुलाने का यह जवाब है हमारी व्यवस्था का। व्यवस्था चाहती है कि केवल वे ठेकेदार बने रहें, सब कुछ करते रहने का दम भरते रहें। जनता केवल उनके आगे–पीछे घूमती रहे, हाथ फैलाती रहे। वे दाता होने का भ्रम पाले रहें। असल में बौद्धिक चरित्र को विकसित होने का मौका देने का अर्थ है अपनी सत्ता के सामने प्रश्न उठाना और सत्ताएं ऐसे गैर जरूरी प्रश्नों को सुनने की जहमत नहीं उठाती हैं। वे यह सिद्ध करने की कोशिश करतीं हैं कि किसी विनोद में यह कूवत ही नहीं है कि बिना उनकी अनुमति के वे कुछ भी कर सकें, किसी प्रतिष्ठित अखबार में साप्ताहिक कालम लिख सकें, सिर उठा के जी सकें, आत्मनिर्भर बन सकें, उनका तो उनकी इच्छा के बिना सांस लेना भी मुश्किल है।

Key word: *जद्दोजहद, किन्नर, लांछना, लिंग विकलांग, इतर, मुख्य धारा, विमर्श, हाशिए, संस्कृति, बहिष्कृत, उपेक्षित, बेजुबान, भयावह पीड़ा, सरणि, चेतना, नियोक्ता, कुन्द बौद्धिक, आत्मनिर्भर, आख्यान, विज्ञापन, कचोट, जननांग दोषी, छटपटाहट, मुक्ति, आत्ममंथन।*

उपन्यास कथा का विस्तृत और सशक्त माध्यम है। बड़े फलक पर लंबी और इससे जुड़ी अनेक कहानियों के द्वारा एक आख्यान का रूपाकार ग्रहण करना तथा प्रभाव डालना संभव हो पाता है। शायद यही कारण है कि चित्रा मुद्गल उपन्यास विधा के माध्यम से मानव समाज की एक बड़ी ज्वलंत समस्या को उठाती है। उत्तर आधुनिक समय में विमर्शों का दौर भी मौका दे रहा है वंचितों को, हाशिए पर खड़े लोगों को अपनी बात कहने का। यह बात स्वयं उनके द्वारा भी कही जा रही है तथा लेखन में लब्ध प्रतिष्ठ कथाकारों द्वारा भी कही जा रही है। मैनेजर पाण्डेय का कथन है, ''उपन्यास ने साहित्य की संस्कृति का स्वरूप बदला है। भारतीय समाज के जो हिस्से, समुदाय और व्यक्ति मुख्यधारा से अलग हाशिए पर रहने के लिए मजबूर थे, वे साहित्य–संसार के भी हाशिए पर ही रहने के लिए अभिशप्त थे। मुख्यधारा से प्रायः बहिष्कृत, उपेक्षित, अदृश्य और बेजुबान जन को उपन्यास में जगह मिली है। यही नहीं पहले जो साहित्य में कहीं नहीं होते थे वे उपन्यास के माध्यम से साहित्य संसार के नागरिक बनने लगे और नायक भी।''[1] पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा में चित्रा मुद्गल विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली की कहानी कहती हैं, कहानी उस मनुष्य की है जो स्त्री–पुरुष पहचान से इतर जन्मा

है। समाज ऐसे मनुष्य को किन्नर (किम्+नर) हिजड़ा आदि नाम देकर एक अलग खाँचे में रख देता है। किन्नर शब्द वस्तुतः किन्नौर वासियों की पहचान से जुड़ा है, कब लिंग विकलांग मनुष्य का पर्याय बन गया कहा नहीं जा सकता है। विनोद को चंडीगढ़ में किन्नर बिरादरी को संबोधित करने के पूर्व हिदायत दी जाती है कि वह किन्नर शब्द के इस्तेमाल से बचे क्योंकि चंडीगढ़ तथा हिमाचल में ज्यादा दूरी नहीं है। समाज के पास लिंग विकलांग मनुष्य के लिए कोई जगह नहीं है। उनकी जगह समाज की मुख्य धारा से अलग ऐसे ही लोगों के बीच है जो अपने–अपने घर तथा समाज से बहिष्कृत हैं अच्छे, खाते–पीते परिवार से संबंध रखते हुए भी सबके सामने हाथ फैलाने को बाध्य हैं। जीने के स ंकट उनके सामने भी है। उनका जीवन उनके लिए प्रतिपल शर्मिंदगी का पर्याय बन जाता है। मुख्यधारा से कटा यह पूरा समुदाय शिक्षा से वंचित है, संपति के अधिकार से वंचित है, परिवार के स्नेह से वंचित है, कुल–गोत्र की पहचान से वंचित है। हमारी आख्यान परम्परा में इस वर्ग से जुड़ी कहानियाँ मौजूद हैं। महाभारत में अर्जुन का वृहन्नला हो जाना अप्सरा के शाप का परिणाम है तो अम्बा का शिखण्डी हो जाना भीष्म के प्रति प्रतिशोध की प्रतिज्ञा का परिणाम है। किन्तु विनोद न तो अर्जुन है जिसे महाभारत का युद्ध जीतना है और न अम्बा ही जिसे भीष्म की मृत्यु का कारण बनना है। उसे तो बस मनुष्य रूप में अपनी पहचान पानी है, पढ़ना–लिखना है, अपनी बा का प्यारा पाना है, पूनम जोशी से प्यार भरा रिश्ता निभाना है, ज्योत्सना को स्मृतियों में बसाए रखना है, उससे विवाह करने के स्वप्न देखना है, आत्मनिर्भर होकर घर–परिवार की जिम्मेदारी में हाँथ बँटाना है। समाज में स्त्री–पुरुष से इतर पहचान के साथ जन्म लेना एक भयावह त्रासदी है। विनोद इस त्रासदी को जीवन भर भुगतता है। विनोद ही क्यों उसके समुदाय के सभी मनुष्य पीड़ा की गहरी सरणि से गुजरते हैं। घर परिवार वाले भी गहरी यन्त्रणा से गुजरते हैं। सामाजिक–पारिवारिक दबाव के कारण भले ही लिंग विकलांग शिशु को किन्नर समाज को सौंप कर लांछना से मुक्त होने की कोशिश करते हैं किन्तु मन की लांछना प्रतिपल अग्नि बन कर भीतर धधकती है। विनोद की माँ बा प्रतिपल इस अग्नि में जलती हैं अपने को धिक्कारती हैं। उपन्यास के अन्त में हम उन्हें प्रायश्चित स्वरूप अपनी भूल स्वीकारते हुए भी देखते हैं। बा गंभीर रूप से बीमार है। उनके बचने की संभावना नहीं है। मरने के पूर्व वे विनोद के प्रति किए गए व्यवहार के लिए क्षमा याचना करती हैं। उन्हें मालूम है कि उनका मँझला बेटा विनोद शाह टाइम्स ऑफ इण्डिया पढ़ना पसंद करता है। इस कारण वे टाइम्स ऑफ इण्डिया के प्रथम पृष्ठ पर एक क्लासीफाइड विज्ञापन प्रकाशित कराती हैं जिसमें वे अपने लिंग विकलांग पुत्र विनोद शाह से माफी माँगती है, उसे सम्पत्ति का अधिकारी बनाने की उद्घोषणा करती हैं, अपनी मृत्यु के उपरान्त क्रिया कर्म विनोद शाह के उपलब्ध न होने तक रोकने की अपील करती हैं। तीनों सन्तानों के द्वारा मुखाग्नि प्रदान किए जाने संकल्प देती हैं। इस विज्ञापन के सबसे उल्लेखनीय पक्ष दो बिन्दु है–

1. शव को तब तक शवगृह में सुरक्षित रखा जाए जब तक विनोद क्रियाकर्म के लिए उपलब्ध न हो जाय।
2. उनके पति हरीन्द्र शाह उनकी अन्तिम इच्छा का सम्मान करेंगे।

विज्ञापन प्रकाशित होने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो चुकी है। इसका दुखद पक्ष यह है कि माँ तथा पुत्र की मुलाकात जीते जी नहीं हो पाती है। वह माँ जो अपने पुत्र को चंपा बाई को सौंपकर एक पल भी चैन नहीं पाती है। पुत्र भी माँ को देखने के लिए व्याकुल है। दिल्ली से मुंबई की उड़ान भरता है लेकिन घर नहीं पहुँच पाता है। शिकार हो जाता है किन्नरों की आपसी रंजिश का। मिठी नदी में उसकी फूली लाश बरामद होती है। शिनाख्त नहीं हो पाती क्योंकि सिर बुरी तरह कुचला हुआ है। सारी जद्दोजहद कहानी ही बनकर रह जाती है, अनिर्णीत। विनोद कई बार मरने के लिए सोचता है लेकिन मरने के बाद भी वह किन्नर के रूप में ही पहचाना जाए यह उसे मंजूर नहीं है। कैसे और किस रूप में जन्म मिले यह तो चुन नहीं पाया किन्तु मृत्यु चुनने का अधिकार तो उसे है। लेखिका उसकी अन्तर्वेदना को कैसे अभिव्यक्त करती है, ''शहर में मरूँगा तो लाश किन्नरों के हाथ लगेगी। किन्नरों के विधि–विधान से मौत का निपटारा होगा। किन्नर के रूप में मैं मरना नहीं चाहता। अपनी मर्जी से मर सकता हूँ तो मौत का निपटारा भी मेरी मर्जी से ही होना चाहिए। ऊँचे पहाड़ पर जाकर मरना उचित होगा। हजारों फीट गहरी अलंध्य घाटी में कौन खोजेगा मेरी लाश को? लाश के टुकड़ों से चिपककर तुझे भी छाती कूटने का मौका नहीं मिलेगा। यही तो चाहता हूँ मैं।''[2] लेकिन विडम्बना कितनी गहरी है कि वह मारा जाता है अपने ही शहर मुंबई में और पहचाना जाता है किन्नर के रूप में, नाम से शिनाख्त नहीं हो पाती और छाती कूटने के लिए बा भी जिंदा नहीं।

माँ और संतान का रिश्ता हर रिश्ते से विलक्षण होता है, खास होता हैं। विनोद और बा पत्र के माध्यम से जुड़े हैं। विनोद को बा पोस्ट ऑफिस का पता देती है जिससे दोनों के बीच होने वाले पत्राचार की किसी को भनक न लगे। उपन्यास में 23 जुलाई 2011 से 24 दिसम्बर 2011 के बीच लिखे गए सत्रह पत्रों का उल्लेख है। प्रथम सात पत्र मोहन बाबा नगर, बदर पुर, दिल्ली के पते से लिखे गए हैं। आठवाँ पत्र लाजपत नगर, दिल्ली से लिखा जाता है। 5 दिनों में आठ पत्र एम0एल0ए0 हॉस्टल चंडीगढ़ से लिखे जाते हैं जिनमें से एक दिन में वह तीन पत्र माँ को लिखता है। एक पत्र में समय लिखता है, झपकी ले लेने के बाद एक में लिखता है– रात्रि का तीसरा पहर। आखिरी पत्र वह पोस्ट नहीं कर पाता है लिख कर अपने पास रख लेता है सोचता है खुद ही अपने साथ लेकर जाएगा तथा अपने मुँह से पढ़ कर सुनाएगा। विनोद अपनी माँ को पत्र में हर घटना की, हर समस्या की, अपने इर्द–गिर्द रहने वाले हर व्यक्ति की सूचना देता है। किन्नरों के बीच रहता विनोद माँ से उसी खास संबंध के नाते पूछता है, ''तेरी कोख, बा तुझसे कभी लड़ती नहीं है कि तूने मेरे बिन्नी दीकरा के साथ ऐसा बर्ताव क्यूँ किया।''[3] कितनी कचोट है विनोद के मन की। लिंग विकलांगता के कारण घर से बेघर कर दिया जाता है। सजा पाता है उस गलती की जो उसने नहीं की है। अपनी पीड़ा वह माँ से पत्र में बाँटता है,'' जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुँआ है जिसमें सिर्फ साँप–बिच्छू रहते हैं। साँप–बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।''[4] जननांग दोषी होना कितना बड़ा दोष है, कलंक है कि विनोद के पिता ने उसे चंपाबाई को सौंपकर उसकी मृत्यु की कहानी गढ़ी। विनोद का मन इस समस्या की तह में जाकर सोचता है। चंडीगढ़ में प्रेस कॉन्फ्रेन्स के लिए जाते समय विनोद को आशंका है कि कहीं पिता तक उसकी सक्रियता की सूचना अखबारों द्वारा न हो जाए तथा पिता के द्वारा किए गए संबंध पर पटाक्षेप का परदा पुनः न उठ जाय, ''सात पुश्तों तक भी दाग न धुलें, ऐसे कलंक से अपने प्रतिष्ठित परिवार, कुटुम्ब और समाज की नजरों से बचाने के लिए पप्पा ने मेरी मृत्यु का नाटक रचा, मीडिया पर उसकी सच्चाई प्रकट होते ही कहीं पप्पा को हृदयाघात न हो जाए।''[5] लिंग विकलांगता कैसे एक जीते–जागते मनुष्य को परिवार से समाज से काट देती है नाला सोपारा इसका यथार्थ कहता है। विनोद के बड़े भाई का उसके प्रति किया जाने वाला व्यवहार बड़ा ही रूखा तथा संवेदनहीन है वह उसे घर से निकाल दिए जाने के बाद भी उसकी काली परछांई से सशंकित रहता है। वह घर से उसकी यादों को भी मिटा देना चाहता है। उसका चित्र, उसकी पसंद की वस्तुयें कुछ भी घर में नहीं रहने देना चाहता है। माँ पर झुँझलाता है, अलग गृहस्थी बसाता है कि उसके जननांग दोष का प्रभाव उसकी आगामी संतान पर न पड़ जाये।

यह माँ है जो विनोद को छोड़ कर भी नहीं मुक्त हो पाती है स्मृतियाँ उसे और बाँध लेती है। उसका संबंध परिवार के अन्य सदस्यों से अलग है। उसका मन प्रतिपल उसे लांछित करता है बिन्नी की यादों से छुटकारा पाने के लिए घर वाले घर बदल लेते हैं लेकिन यादें यहाँ भी डेरा डाल लेती हैं। विनोद के मामा का उसके पिता से कहा गया कथन ''सही किया बानवी (बहनोई) घर बदल लिया। आदमी दुःख से लड़े कि घर से। घर दुःख को गीला किए रहता है। सूखने ही नहीं देता उसे।''[6] स्मृतियों के इसी सच को उद्घाटित करता है। माँ नए घर में भी उसकी तस्वीर ही नहीं स्कूल बैग, पानी की बोतल भी सँभालती दिखती है।

माँ का सपना है उसका पुत्र महान गणितज्ञ बने। विनोद में भी शिक्षा की ललक है। अपनी पढ़ाई iwjh करके वह अपनी पहचान बनाना चाहता है। याद करता है अपने अतीत को कि यदि उसे घर से बेघर नहीं होना पड़ता तो वह अब तक डिग्री हासिल कर चुका होता और आगे एम0फिल तथा गणित में पी0एच0डी0 की सोचता है, नेट पास करके किसी कॉलेज में एडहॉक पर पढ़ाने की जुगत लगाता। बा को पत्र में लिखता है, ''बा पढ़ने के लिए छटपटा रहा हूँ। जाने गणितज्ञ हो पाऊँगा भी या नहीं। जिन्दगी में कितना समय बह गया। उसकी मनमानी रोक भी नहीं सकता था।''[7] पूनम जोशी को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। उसने आत्ममंथन से यह सत्य पाया है कि शिक्षा का कोई विकल्प नहीं है। उसे मुक्ति के उपाय के रूप में देखता है। पूनम से उसका कथन है, ''तुम इतना ता पढ़लो कि विश्व के कुछ अच्छे उपन्यास पढ़ सको। हम आपस में उनके चरित्रों पर बात कर सकें। पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई रास्ता छोड़ा ही नहीं गया हमारे लिए।''[8] पढ़ने की ललक उसमें अजीब छटपटाहट पैदा करती है। वह चौदह वर्ष का किशोर था जब परिवार से किन्नर समुदाय में शामिल होता है। वह अपने को उस समुदाय से जोड़ ही नहीं पाता जिसमें जबरन शामिल किया गया है। किन्नर समुदाय में भी जीने की एक व्यवस्था है। वहाँ भी परिवार की तरह एक मुखिया है जिसे सरदार कहा जाता है। वे अलग–अलग धार्मिक पृष्ठभूमि से आए हुए लोग है लेकिन लिंगीय कमी उन्हें एक प्लेटफॉर्म पर ला खड़ा करती है। समुदाय के सदस्य नाच–गाकर पैसे कमाते हैं जिसका एक बड़ा हिस्सा सरदार को सौंपा जाता है। सरदार द्वारा दिए गए आसरे का भुगतान है यह, एक आपसी समझौता। विनोद भी उसे इस हेतु पन्द्रह सौ

रूपये महीना देता है। एक बार उसने ठिकाने से भाग जाने की कोशिश की थी। दिल्ली से अलीगढ़ जाकर बेकरी में काम करना शुरू किया लेकिन इतना मजबूत नेटवर्क है इस बिरादरी का कि दो ही तीन दिन में ढूँढ़ लिया जाता है। कम्प्यूटर क्लास में दाखिले हेतु जाने से पूर्व पूनम विनोद को सलाह देती है कि सरदार का आशीर्वाद लेकर जाए क्योंकि सरदार को चेले द्वारा नजर अन्दाज किया जाना बर्दाश्त नहीं है। विनोद के अपने तर्क हैं उसे सरदार की यह तानाशाही स्वीकार नहीं है। उसने सरदार से कोई गुन्डा नहीं बँधवाया है, वह तो उसकी जबरन कैद का शिकार है। उसके और चम्पाबाई के बीच हुई साँठ–गाँठ का नतीजा भुगतान हुआ। एक असहज माहौल में रहकर जीने की कोशिश करता हुआ किशोर से युवा होता मनुष्य। अपनी बा को पत्र में अपनी मनः स्थिति से परिचित कराता है,'' बात–बात पर ताली पीटना मेरी स्वाभाविक प्रकृति नहीं है। स्त्रैण लक्षण मुझमें कभी नहीं रहे। अब भी नहीं है और जो लक्षण मुझमें नहीं है उन्हें सिर्फ इसलिए स्वीकारूं कि मेरी बिरादरी के शेष सभी, उन हाव–भावों को अपना चुके हैं।'' किन्नर समुदाय जी–जान से कोशिश करता है कि वह उनके तौर तरीके अपना ले, उनकी तरह जीना सीख ले। समुदाय के अनुरूप व्यवहार करना प्रारम्भ करे किन्तु विनोद का स्वाभिमानी मन इसे स्वीकार नहीं कर पाता है। उसे राह पर लाए जाने के लिए किए गए उपाय बड़े अमानवीय हैं जिसमें मारना–पीटना गाली देना भी शामिल है। उसकी व्यथा उपन्यास में इस तरह स्थान पाती है,'' उनके लात, घूंसे, थप्पड. और कानों में गर्म तेल सी टपकती किसी भी संबंध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक–मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न सलमे–सितारे वाली साड़ियाँ लपेट लिपिस्टिक लगा कानों में बुंदे लटकाने को।''[10] बचपन से पड़ी आदतें उसकी दिनचर्या में अभी भी शामिल है। रोज सुबह स्नान करके कृष्ण का ध्यान करना भी वह नहीं भूलता है उसके संगी–साथी उसकी इस आदत पर उपहास करते हैं। उनकी दृष्टि में यह संत–महात्माओं जैसा व्यवहार है उनकी अपनी बिरादरी का कायदा–कानून नहीं है। विनोद कम्प्यूटर कोर्स में दाखिला लेता है जिससे वह उस कैद से मुक्त हो सके। इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय से पत्राचार माध्यम से बोर्ड की परीक्षा में शामिल होना चाहता है। माँ को पत्र लिख कर माँ के नाम के कॉलम में उसका नाम भरने की अनुमति चाहता है। आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने के लिए सोसायटी में गाड़ियाँ धोता है। किन्नरों द्वारा पैसे कमाने के लिए किए जाने वाले कार्यों को करने की जगह मेहनत को तरजीह देता है। संघर्ष से घबराता नहीं है। उसकी मंजिल है मनुष्य के रूप में पहचान तथा परिवार के सदस्य के रूप में स्वीकृति। वह अपने समुदाय के अन्य किन्नरों को भी पढ़ना–लिखना सिखाता है उनमें शिक्षा के प्रति जागरूकता जगाने की कोशिश करता है।

भारत वर्ष में लोकतांत्रिक व्यवस्था को शासन के लिए अपनाया गया है। चित्रा मुद्गल इस मुद्दे से जुड़ी राजनीति को भी उपन्यास में अंकित करती है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में अलग–अलग राजनीतिक दल क्रियाशील रहते हैं अतः वे अपनी क्रियाशीलता लाभ के कार्यों में इस्तेमाल करते हैं। वास्तव में दिखाने की कोशिश यह होती है कि वे राजनीतिक दल वंचित समुदाय के हित में संलग्न हैं किन्तु भीतर की बात कुछ और होती है। इस उपन्यास में किन्नरों की समस्या के प्रति आवाज उठाने को तैयार एक राजनीतिक दल के विधायक विनोद को मोहरे की तरह इस्तेमाल करते हैं। किन्नरों के प्रति उनकी संवेदना केवल पार्टी हित में जागती है। विधायक जी के लिए काम करने वाले तिवारी जी विनोद से कहते हैं, साथ देंगे किन्नर हमारा तो हम उनके आरक्षण की मुहिम चलाएंगे। जोड़ेंगे उन्हें विकास के समान अवसरों से शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति, ऋण, बूढ़ों की पेंशन, बेरोजगार युवाओं का भत्ता, लेकिन ताली एक हाथ से नहीं बजती। संगठित होना पड़ेगा। आवाज उठानी पड़ेगी। देशव्यापी आन्दोलन छेड़ना होगा। जेलें भरनी पड़ेंगी, धरने देने होंगे।[11] चित्रा मुद्गल भारतीय राजनीति के बदरंग चेहरे को उघाड़ कर सामने रख देती हैं, मुलम्मा हटा कर असलियत सामने लाती है, पूरे ढ़ोंग का सच कहती है। इस व्यवस्था ने समस्या को भुनाने की तरकीबें सीख ली हैं। वह हर समस्या का फायदा उठाना जानती हैं। उसके लिए हर व्यक्ति बस वोट है। विनोद को नेतृत्व के लिए तैय्यार किया जाता है। वास्तव में नजर एक पूरे समुदाय पर है। उनकी समस्या से उनका कोई लेना–देना नहीं है न उन्हें दूर करना ही उनका उद्देश्य है वे तो बस यह चाहते हें कि यह वर्ग उनकी बातों में आकर उनके अनुसार क्रियाशील हो जाए उनके हाथ की कठपुतली बन जाए, वे आवश्यकतानुसार फायदे का खेल खेलें, खेल के खिलाड़ी तैयार करें, जिसे चाहे सामने लाएं जिसे चाहें अँधेरे में धकेल दें, जिसे चाहे जीवन से दूर कर दें। विनोद की अति सक्रियता उन्हें स्वीकार नहीं है। विनोद को तो अपनी समस्या का समाधान अपनी तरह से चाहिए। यह तो व्यवस्था स्वीकार कर ही नहीं सकती कि उसमें कोई विचलन हो फलतः विनोद भी धीरे से रास्ते से हटा दिया जाता है। माँ को देखने के लिए मुंबई गया विनोद वहीं मार दिया जाता है। संवेदना के दो छोर बिना मिले ही निष्प्राण हो जाते हैं। यह समस्या जस की तस बनी रहती है। मुश्किल तो यही है कि इस पूरे वर्ग में भी वह छटपटाहट नहीं है जो

विनोद के भीतर है। हालात को बदलने की जद्दोजहद जैसी उसमें है अन्य पात्र तो उस व्यवस्था के साथ कंडीशंड स्थिति में हैं हम जैसे हैं केवल वैसे ही जीते चले जाएं यह बात विनोद को स्वीकार नहीं। विनोद के भीतर की इसी हलचल का फायदा व्यवस्था उठा लेना चाहती है। उसे तो एक नेता खड़ा करना है। विनोद से तिवारी जी का कथन है, ''इतने खुदगर्ज न बनो। खुद पढ़ लिख कर आत्म निर्भर होना चाहते हो। शेष बिरादरी को कुएं का मेढ़क बने रहने के लिए विवश कर रहे हो.... दलितों के लिए अम्बेडकर पैदा हो सकते हैं तो किन्नरों के लिए विनोद क्यों नहीं पैदा हो सकता।''[12] वह जिस प्रकार भी संभव हो विनोद का इस्तेमाल करना चाहता है। वह उसकी क्षमता पहचान जाता है। उसके रहने का इन्तजाम विधायक जी के आवास के बेसमेन्ट में किया जाता है। छल से चंडीगढ भेज दिया जाता है। विधायक जी विनोद से अपने साथ चंडीगढ़ चलने की बात करते हैं। वह कपड़े इत्यादि लेकर आता है तो पता चलता है कि वे जा चुके है और अब वह दूसरी गाड़ी से जाएगा। इसी प्रकार उससे दूसरे दिन वापस आने की बात कही गई थी किन्तु दूसरे दिन विधायक जी उससे बिना बताए वापस दिल्ली आ जाते हैं और वह पाँच दिन चंडीगढ़ में एक विशेष प्रयोजन से रोक दिया जाता है। विनोद को प्रसन्न करने के लिए तिवारी विधायक जी के हवाले से कहते हैं, ''विधायक जी ने पंचम से तुम्हारी भूरि–भूरि प्रशंसा की है कि तुम देश के किन्नरों को समाज के सम्माननीय दर्जा दिलाने के पक्षधर हो। संकल्पित हो पार्टी ने तय किया है, तुम्हारे जज्बे का आदर करेगी। चुनाव दूर होकर भी दूर नहीं है। पैसे–कौड़ी की चिन्ता मसला नहीं।''[13] विनोद को समझा–बुझाकर, क्या कहना है, क्या नहीं कहना है एक सभा में भेजा गया है लेकिन विनोद जो अपनी पहचान के लिए संघर्षरत है जिसके भीतर अपने ही घर में रहने के अधिकार की आँधी चल रही है, वह अपने दिल की बात कहता है उसे तो वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति में, हर बच्चे में छिपा बैठा विनोद दिखाई दे रहा है। वह उनसे कहता है, वो जो आपको इन्सान नहीं समझते आपके जीने–मरने से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। अन्धेरे के बावजूद वो आपकी मैयत को कन्धा देने नहीं पहुँचते। आँसू नहीं बहाते। रूढ़िंढ–ढांढ नाच–गाने आशीषने पहुंचते हैं आप, उन्हीं के घर दूसरे रोज पहुंच कर देखिए? घर का दरवाजा आपके मुंह पर भेड़ दिया जाएगा।''[14] और सभा समाप्त होने पर विनोद की क्या खबर ली जाती है। उसकी लानत–मलानत करते हुए किन्नरों के बीच स्वाभिमान का पाठ पढ़ाने को उसके द्वारा किए गए अपराध के रूप में दिखाया जाता है।

विनोद को पहचान देने के लिए आधार कार्ड बनता है बिमली सहगल के नाम से। विनोद को यह स्वीकार्य नहीं है न वह अपने को बिमली नाम से जोड़ पाता है न सहगल उपनाम से। उसे बिमली संबोधन सुनना पसंद नहीं है। उसे तो अपने भीतर के पुरुष की ही पहचान चाहिए, बचपन से वह पड़ोस में रहने वाली ज्योत्स्ना के प्रति आकर्षित है। किन्नरों के बीच रहते हुए वह पूनम जोशी जिसके भीतर एक भरी पूरी स्त्री जिंदा है के प्रति भावानात्मक लगाव महसूस करता है वह एक बड़े वाजिब सवाल के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट करता है वह है मनुष्य होने के नाते स्त्री–पुरुष माने जाने का सवाल, इससे इतर किसी पहचान को वह सिरे से खारिज कर देता है,'' लिंग दोषी सभी लिंग से स्त्री–पुरूष नहीं है तो क्या मनुष्य नहीं है? पेशाब भी करते हैं, पाखाने भी जाते हैं। हाँ उन सबकीं तरह वीर्य नहीं उगल सकते हैं। मैथुन नहीं कर सकते। इसका मतलब यह नहीं, ये मनुष्य नहीं है।''[15]

उपन्यास में किन्नर समुदाय से जुड़े एक अन्य भयावह और घृणित सत्य का उद्घाटन भी किया गया है। उपन्यास में पूनम जोशी से जुड़ी घटना के माध्यम से किन्नरों के शारीरिक शोषण का यथार्थ उद्घाटित किया गया है। पूनम नटखट और कुशल नचनियां है। बाईल्ला (स्त्रैण) हाव–भाव और अटक–मटक से भरी हुई। तीन बरस की अवस्था से तुलसी बाई के साथ है। उसे अपने माँ–बाप की भी याद नहीं है। किन्नर दल में शामिल होने पर सरदार ''चुनौटी'' कहकर पुकारते थे। पूनम को यह संबोधन खिल्ली उड़ाता सा लगता था। सरदार को वर्जित करके वह अपना नाम खुद चुनती है– ''पूनम''। अपने माँ–बाप का नाम भी खुद चुनती है– कविता जोशी तथा बलराज जोशी। कथक नृत्य में पारंगत पूनम का नृत्य विधायक जी के फॉर्म हाउस में उनके विदेश से आए भतीजे तथा उसके मित्रों के मनोरंजन हेतु रखा जाता है। जहाँ नृत्य के उपरान्त वे सब बारी–बारी से उसका बलात्कार करते हैं उसके पूर्व वे हिजड़ों का गुप्तांग देखने के लिए उसे दबोचते हैं। उन्हें असली–नकली औरत का फर्क देखना है। इसके लिए रकम चाहे जितनी लग जाए वे देने के लिए तैयार हैं। उसके रसीले होंठ कुतर डाले, उसकी टाँगे खींच कर धुरी–काँटे से उसके शरीर की चीर–फाड़ करते हैं और इस तरह पाशविकता का नृशंस कृत्य करके भोजन का स्वाद लेते हैं। घटना की सूचना विधायक जी तक पहुँचने पर वे सब किसी अज्ञात स्थान पर सुरक्षित भेज दिए गए और पूनम जोशी को अस्पताल में भर्ती करा दिया गया और विधायक जी जवान खून के बहकने की बात स्वीकार करके पूनम के इलाज के सम्पूर्ण खर्च को वहन करने का दायित्व लेते हैं।

पूनम के संदर्भ में विनोद अपने सरदार पर भी प्रश्न चिन्ह उठाता है क्योंकि सरदार जेल से छुड़वा दिए जान की एवज में शान्त रहता है पुलिस में शिकायत तक दर्ज नहीं कराता है।

एक स्वस्थ समानाधिकार प्राप्त समाज में हर व्यक्ति की समान उपयोगिता, स्थिति तथा सत्ता होनी चाहिए। हम ऐसा समाज कब निर्मित कर पाएंगे जब किसी भी व्यक्ति को अपने जन्म पर शर्मिन्दगी न महसूस हो। उसका होना ही महत्वपूर्ण हो फिर वह स्त्री हो पुरुष हो या कुछ और हो। उपन्यास में लेखिका इस बेहद जरूरी संदर्भ को कुछ यूँ दर्ज करती है, ''जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ–पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, हैं, सब वैसा ही है, जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने–देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं सोचो।''[16] कुछ इसी तरह के सवाल डॉ0 प्रदीप पाटकर, ''मैं लक्ष्मी के बहाने'' में कहते हैं, ''हिजड़ों को अगर ठीक से जान लिया जाय तो उनकी इनसानियत, उनकी विशेषताएँ, बुद्धिमत्ता कला–कुशलता सब कुछ हमारे जैसा ही है, यह सीधा–सा सच समझने के लिए हमें और कितने साल लगेंगे? हिजड़ों के पास कोई चारा ही नहीं कि वे शरीर बेचने, भीख माँगने के अलावा भी कुछ कर सकें तो फिर उन्हें धमकी देकर डराना या यह कहना कि वे अपराध आदि करना छोड़ दें तो हम उन्हें अपना सकते हैं, कहाँ तक उचित है? परन्तु सच यही है कि हमने उन्हें अभी तक समाज में अपनाया नहीं है। असल में दोनों को एक–दूसरे को अपनाते समय हमें बहुत से बदलाव अपनी मानसिकता में करने होंगे।''[17] और मानसिकता में बदलाव इतनी आसानी से और शत–प्रतिशत तो नहीं ही संभव है। उपन्यास में विनोद की परिणति किसी दुर्घटना का परिणाम न हो कर सोची–समझी करतूत है। चंडीगढ़ में उसकी स्वीकार्यता देखकर उसके नियोक्ता डोर खींचकर गति अवरूद्ध करने की तैयारी करते हैं। उसे तुरंत दिल्ली बुलाया जाता है और वहाँ से माँ की बीमारी के बहाने मुंबई का टिकट थमा कर ठिकाने लगा दिया जाता है। यह जवाब है हमारी व्यवस्था का चेतना को कुंद करने का। जाग्रत को सुलाने का। व्यवस्था चाहती है कि केवल वे ठेकेदार बने रहें सब कुछ करने का दम भरते रहें तथा जनता केवल उनके आगे–पीछे घूमती रहे, हाथ फैलाती रहे वे दाता होने का भ्रम पाले रहें। असल में बौद्धिक चरित्र को विकसित होने का मौका देने का अर्थ है अपनी सत्ता के सामने प्रश्न खड़ा करना और सत्ताएं ऐसे गैर जरूरी प्रश्नों को सुनने की जहमत नहीं उठाती हैं और अपने कार्यों से यह सिद्ध करती हैं कि किसी विनोद में यह कूबत नही है कि बिना उनकी अनुमति के वे किसी प्रतिष्ठित अखबार में साप्ताहिक कॉलम लिख सकें, सिर उठाकर जी सकें, आत्मनिर्भर बन सकें, उनका तो उनकी इच्छा के बिना साँस लेना भी दूभर है।

संदर्भ सूत्र

1. उपन्यास की सामाजिकता– मैनेजर पाण्डेय, पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा– चित्रा मुद्गल, पृ0 33
2. वही, पृ0 120
3. वही, पृ0 11
4. वही, पृ0 179
5. वही, पृ0 75
6. वही, पृ0 89
7. वही, पृ0 110
8. वही, पृ0 10
9. वही, पृ0 9
10. वही, पृ0 153
11. वही, पृ0 157
12. वही, पृ0 158
13. वही, पृ0 186–187
14. वही, पृ0 195
15. वही, पृ0 50
16. मैं हिजड़ा..... मैं लक्ष्मी– लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, जनवरी 2015, पृ0 23

-------****-------